Preface

प्रस्तावना

भारतीय संगीत वाद्यों की श्रेणी में सितार एक सर्वोत्कृष्ट, सर्वोन्नत एवं सम्पूर्ण वाद्य है। यह वाद्य समस्त गायन एवं वादन शैलियों का समाहार है। इस शोधकार्य को तीन प्रमुख अध्यायों में विभक्त किया गया है -- प्रथम अध्याय 'सितार की उत्पत्ति' पर है। विभिन्न मत-मतान्तरों पर दृष्टिपात करते हुए इसे पुन: तीन भागों में विभाजित किया गया है :--

(क) सितार की उत्पत्ति वीणा से

अधिकांश भारतीय संगीतशास्त्री सितार की उत्पत्ति वीणा से ही मानते हैं -- चाहे वह महती, किन्नरी, त्रितंत्री, सप्ततंत्री, चित्रा, विपंची एवं परिवादिनी कोई भी हो। इस संबंध में प्राचीनतम ऐतिहासिक उल्लेख यही मिलता है कि 'सितार' का आविष्कार अमीर खुसरो ने किया। इस भ्रान्त धारणा का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के संगीतशास्त्रियों ने किया। कुछ विद्वानों का मत है कि अमीर खुसरो ने वीणा के आधार पर सितार की उत्पत्ति की, जबकि कुछ विद्वान इस मत को मानते हैं कि अमीर खुसरो ने दक्षिणी वीणा के तारों का क्रम - परिवर्तित करके उसे सितार नाम दे दिया। इस मत का खण्डन करने वालों में लालमणि मिश्र एवं आचार्य बृहस्पति अग्रगण्य हैं। इसके पश्चात् संगीतशास्त्रियों ने सितार की उत्पत्ति क्रमिक रूप से मानकर इसकी प्रारम्भिक स्थिति त्रितंत्री वीणा बतलाई। इन मतावलम्बियों ने त्रितंत्री से जंत्र तथा जंत्र से सितार की उत्पत्ति

मानी । परन्तु, यदि सितार की मूल आकृति पर दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सितार की उत्पत्ति वीणा से नहीं हो सकती क्योंकि सितार एक ल्यूट वाद्य है जबकि वीणा एक स्टिक जिथर है । वीणा में तूंबे डांड के नीचे पेच द्वारा कसे होते हैं, जबकि सितार की डांड तूंबे से ही निकलती है तथा इसका तूंबा तबली से ढका होता है । अत: सितार की उत्पत्ति वीणा से मानने की कल्पना ही निराधार है । कुछ विद्वान सितार की उत्पत्ति सरस्वती वीणा से मानते हैं जोकि एक ल्यूट है, परन्तु प्रारंभिक सितार की आकृति (छोटा तूंबा, पतली व लंबी डांड, तांत के परदे आदि) का अवलोकन करने से यह विचार भी अतार्किक सिद्ध हो जाता है ।

(ख) सितार की उत्पत्ति पर्शिया से

कुछ विद्वानों ने यह सोचना प्रारम्भ किया कि अगर सितार की उत्पत्ति अमीर खुसरो ने नहीं की, तो सितार के साथ खुसरो नाम कैसे जुड़ गया । १९७६ ई० में आचार्य बृहस्पति ने अठारहवीं शताब्दी के कल्पित खुसरो खां नामक व्यक्ति को सितार का आविष्कर्ता बतलाया। जिसका अनुकरण करके इनके बाद कुछ संगीतशास्त्रियों ने भी मौखिक उल्लेखों द्वारा इस मत की पुनरावृत्ति की । परन्तु अठारहवीं शताब्दी के संगीत साहित्य पर दृष्टि डालने से खुसरो खां नामक किसी व्यक्ति की चर्चा नहीं मिलती, जो न्यामत खां का भाई हो । वरन् न्यामत खां के भाई फिरोज खां जो सर्वप्रथम भारत में सितार-वादन शैली के आविष्कर्ता थे, ऐतिहासिक उल्लेखों के आधार पर मान्य हैं ।

सर्वप्रथम जिस पुस्तक में अमीर खुसरो को सितार वादक बतलाया गया है। वह १८३१ ई० में लिखी गयी एक पर्शियन पुस्तक है। इस पुस्तक में सितार की आकृति दी गयी है जो इस प्रकार है -- 'प्यालानुमा तूंबे जैसे भाग से एक डांड आर-पार निकली हुई, जिस पर तीन खूंटियां लगी हैं'। यह आकृति प्राचीनतम पर्शियन सितार की ही है, इस सितार का उल्लेख छठी से तेरहवीं शताब्दी की कई पर्शियन पुस्तकों में मिलता है। छठी से सातवीं शताब्दी में खुसरो परवेज़ के दरबार में बरबद नामक एक प्रसिद्ध गायक इस वाद्य को बजाता था तथा नकीसा उसकी 'चांग' पर संगत करता था। यह उल्लेख तेरहवीं शताब्दी के अमीर खुसरो द्वारा अपने एवं मोहम्मद शाह रंगी के विषय में कहे गए कथ्य के समान है। इसी कारणवश भारत में अमीर खुसरो के साथ सितार को जोड़ने की भ्रान्त धारणा का उन्नीसवीं शताब्दी में उन्नयन हुआ।

आधुनिक सितार पर्शियन सितार का ही विकसित रूप है। विभिन्न देशों के साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि पर्शियन सितार के तूंबे के निचले भाग से निकली हुई डांड, ईजिप्ट में आने पर काट दी गयी तथा यह वाद्य लकड़ी खोदकर भी बनाया जाने लगा। अरबवासी इसी वाद्य को तंबूर के नाम से पुकारने लगे। यह वाद्य व पर्शियन सितार आज भी अफगानिस्तान में तंबूर एवं दोतारे के नाम से जाना जाता है। सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी की लघु - चित्रकारियों एवं लिखित साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि अठारहवीं शताब्दी में इस तंबूर को ही सितार की संज्ञा दी गयी।

(ग) सितार का क्रमिक विकास

तेरहवीं शताब्दी में अफगानिस्तान से दोतारा एवं तंबूर भारत में आए। इतिहास इसका साक्षी है। यह दोनों वाद्य भारत में आकर विभिन्न प्रान्तों में

भिन्न-भिन्न रूपों में विकसित हुआ। जहाँ दिल्ली एवं उसके आसपास अफगानी `दोतारा` को दोतारा एवं पर्शियन सितार कहा गया, वहीं गुजरात में इसे सारंगा के नाम से अभिहित किया गया। दिल्ली में इस वाद्य में तरबों का प्रयोग करके तरबदार दोतारा कहा गया तथा कश्मीर में इसी वाद्य को साज़-ए-कश्मीर कहा गया। साज़-ए-कश्मीर जैसा वाद्य अन्य मुस्लिम एवं पूर्वी देशों में भी पाया जाता है।

`दोतारा` में तारों की वृद्धि करके राजिस्थान का `रावणहत्था` बनाया गया, जिसे लोकसंगीत के साथ ही शास्त्रीय संगीत के लिये भी प्रयोग किया जाता है। बीसवीं शताब्दी में `दोतारा` अथवा पर्शियन सितार में कहीं-कहीं तांत के परदे भी दृष्टिगोचर होते हैं।

तंबूर का विकास निबद्ध व अनिबद्ध तंबूरे के रूप में हुआ जिसका इतिहास साक्षी है। इब्राहीम आदिल शाह ने सर्वप्रथम तंबूर पर ध्रुपद वादन किया जिसके बाद यह वाद्य दरबार में बजाने योग्य समझा जाने लगा। आइने अकबरी, रागदर्पण तथा मीराते देहली में प्रसिद्ध तंबूरचियों का उल्लेख मिलता है। मोहम्मद करम इमाम ने तुलसीराम नामक तंबूर (परदेवाला) वादक को बीन के समान आलाप करते सुना है। मीराते देहली में न्यामत खाँ के भाई की सहतार की नवीन वादन शैली का वर्णन किया गया है। यहीं से प्रमुख सितार का इतिहास आरम्भ होता है। इसे अगर सितार पर बीन शैली बजाने का इतिहास कहें तो अधिक उचित होगा।

पं० अहोबल ने जिस निबद्ध तंबूर का वर्णन किया है, वह बाद में कर्नाटक सितार के रूप में दक्षिण में तथा कश्मीर में कश्मीरी सितार के रूप में विकसित हुआ। गुजरात में शनैः शनैः विकसित होते हुए इसी निबद्ध तंबूरे ने `देसी सितार` का रूप ग्रहण किया। यह सब वाद्य विभिन्न प्रान्तों में लोक-संगीत के लिये प्रयुक्त हुए तथा

कश्मीरी सितार अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही पूर्णत: विकसित हो चुका था। यह प्रामाणिक तौर पर ठोस रूप से कहा जा सकता है।

प्रमुख सितार में क्रमश: धातु के परदे, तारों की संख्या तथा चिकारी और बाद में तरबों का प्रयोग हुआ। इससे सितार की वादन शैली में इतना अधिक विकास हुआ कि इसने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बीन का स्थान ले लिया। ध्रुपद आलाप का सितार पर वादन करने के लिये १८३० ई० के आसपास 'सुरबहार' का आविष्कार हुआ। यह वाद्य बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अत्यधिक प्रचलित रहा परन्तु सितार की विकसित वादन शैली के कारण सुरबहार का सितार के साथ आलाप में प्रयोग समाप्त हो गया।

द्वितीय अध्याय : सितार के बाज

अठारहवीं शताब्दी के मध्य में फिरोजखानी बाज का आविष्कार होने से सितार की वादन शैली को एक निश्चित आधार मिला। परन्तु यह बाज कठिन होने के कारण अधिक समय तक जीवित न रह सका। फिरोज खां के पश्चात पहले मसीत खां ने दिल्ली में मसीतखानी बाज फिर गुलाम रजा ने लखनऊ में रजाखानी बाज का आविष्कार किया। रजाखानी बाज मुख्यत: फिरोजखानी बाज का ही परिवर्तित रूप था जबकि मसीतखानी एक पूर्णत: नवीन बाज था। मसीतखानी बाज में वादन करने की बहुत क्षमता थी। इसमें जितनी देर चाहे, विस्तार किया जा सकता था तथा यह बाज ध्रुपद पर आधारित पृथक बाज था। रजाखानी बाज ठुमरी एवं तराने के आधार पर बजाया जाता था। इसमें मसीतखानी जितना ठहराव नहीं था। यह अमीरों के मनोरंजन के लिये बनाया गया था। रहीमसेन ने सेनी बाज का आविष्कार किया। इन्होंने अपने बाज में ध्रुपद के साथ ही ख्याल का समावेश करके बोलों का कठिन प्रयोग शुरु किया। अमृतसेन ने सेनी बाज को पूर्णत: विकसित किया। इनके वादन में लय का चमत्कार भी समाविष्ट हो गया।

इसके बाद अमीर खां द्वारा अमीरखानी बाज का आविष्कार किया गया, परन्तु यह बाज मसीतखानी बाज से श्रेष्ठ न होने के कारण उसी में विलीन हो गया ।

उन्नीसवीं शताब्दी में रजाखानी बाज का पूरब में विकास हुआ जिसे पहले कलाकार बहुत हेय दृष्टि से देखते थे । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक यह एक सम्मानित बाज बन गया । इस काल में जो वादक रजाखानी बाज बजाते थे, वे मसीतखानी बाज नहीं बजाते थे तथा जो वादक मसीतखानी बाज बजाते थे, वे रजाखानी बाज नहीं बजाते थे । बीसवीं शताब्दी के कलाकारों ने दोनों बाजों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए सम्मिलित रूप से वादन प्रारम्भ किया । इसी काल में इमदाद खानी बाज का आविष्कार हुआ । यह बाज जनरुचि को ध्यान में रखते हुए, ख्याल गायकी का ही अनुकृत रूप है । इसके पश्चात् अब्दुल हलीम जाफर खां के द्वारा जाफरखानी बाज का आविष्कार किया गया । इस बाज में आलाप के बाद बजाए जाने वाले झाले का बहिष्कार करके वादन में क्लिष्ट अंगों का समावेश किया गया है ।

तृतीय अध्याय : सितार के घराने

सितार वादन के घरानों की जड़ें अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पड़ीं । सर्वप्रथम मसीत खां, बहादुर खां, दूल्हे खां, हसन खां, बीबीजान साहिबा तथा सैयद सफदर हुसैन खां ने दिल्ली घराने का सिंचन किया । रहीमसेन से इसी घराने को सेनी घराने के नाम से संबोधित किया गया । इस घराने के प्रमुख वादक अमृतसेन, अमीर खां, फिदा हुसैन, फजल हुसैन रहे । इन वादकों ने अपने घराने की वादन शैली अपने परिवार-जनों के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं दी जिसके कारण इनके बाद से सेनी घराने का अन्त हो गया । कुछ विद्वान बरकतउल्ला खां, आशिक अली खां एवं मुश्ताक अली खां को भी सेनी घराने का ही बतलाते हैं, परन्तु इनके वादन

का तुलनात्मक अध्ययन करने से भी इन्हें सेनी घराने का कदापिनहीं कहा जा सकता । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कई बीनकारों ने किन्हीं कारणों से सितार को अपनाया जिससे सितार के इन्दौर घराने का अभ्युदय हुआ । इनमें मजीद खां, मोहम्मद खां, बाबू खां, रहमत खां, रहीस खां, अब्दुल हलीम जाफर खां तथा उस्मान खां उल्लेखनीय हैं । इसी प्रकार उत्तरप्रदेश में रामपुर के वज़ीर खां से रामपुर घराने का आविष्कार हुआ जिसका मुख्यत: श्रेय अल्लाउद्दीन खां को दिया जाता है । इस घराने में आज के प्रमुख सितार वादक निखिल बैनर्जी, रविशंकर आते हैं ।

इमदाद खां के वंशजों द्वारा ख्याल गायकी का पूर्ण अनुकरण करने से इटावा घराने का अभ्युदय हुआ। इसमें इमदाद खां, इनायत खां, वहीद खां, विलायत खां एवं इमरत खां प्रमुख हैं । इसी प्रकार लखनऊ के आसपास रजाखानी बाज की प्रधानता के कारण लखनऊ घराना पनपा जिसमें मुख्यत: यूसुफ अली खां, स्माइल खां, इलियास खां हैं । परन्तु आधुनिक समय में वैज्ञानिक उपकरणों के कारण विभिन्न घरानों की पृथक सत्ता समाप्त हो गयी है तथा सभी स्वेच्छा से किसी भी वादन शैली को अपनाने लगे हैं जिससे 'घराने' का आधुनिक समय में कोई स्थान नहीं है ।

चतुर्थ अध्याय : सितार के सौन्दर्यात्मक तत्व

आज का मानव वैज्ञानिक दृष्टिकोण में ही विश्वास रखता है । अत: संगीत के सौन्दर्यात्मक तत्वों का मूल्यांकन करने के लिये भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना ही उचित होगा । यह प्रामाणिक तथ्य है कि संगीत अपनी ध्वनि तरंगों से मानव मस्तिष्क में विचारों का उन्नयन करता है जिससे विभिन्न भाव उभर कर आते हैं । विशेष ध्वनि तरंगें, विशेष प्रकार के विचारों तथा भावों से जुड़ी होती हैं । इसी कारण सिर्फ ध्वनि के माध्यम से ही हम किसी के रोने अथवा हंसने को समझ सकते हैं । अत: सांगीतिक स्वरों की क्रमबद्धता ~~और~~ हमारे मस्तिष्क में किसी

एक विचार को उजागर करती है, जिससे हमें रसानुभूति होती है। एक उच्चकोटि का कलाकार श्रोतागणों के मस्तिष्क में उभरी किसी एक विचारधारा को भंग नहीं होने देता और श्रोता उसके वादन में पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हैं। इसके लिए श्रोता एवं वादक का तन्मय होना एवं स्थितिपर्जना की स्थिति में आना अति - आवश्यक है।

सितार-वादन के सौन्दर्यात्मक तत्वों का मूल्यांकन करने के लिये मनो - वैज्ञानिक जांच की शर्तों को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रयोगों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गए हैं :-- सितार वादन का प्रारम्भ आलाप के षड्ज लगाव से होता है। श्रेष्ठ कलाकार के द्वारा यह स्वर इतना सच्चा लगाया जाता है कि राग रूप ही सामने आ जाता है। इसके पश्चात् आलाप का वादन होता है जो श्रोता में शान्त रस का संचार करता है। लगभग सभी रागों के आलाप का प्रभाव समान ही होता है। आलाप के पश्चात् जोड़ालाप में कुछ चंचलता का समावेश होता है तथा करुण एवं शान्त भावों को प्रकट किया जाता है। जब सितार - वादन में तालबद्ध रचना का वादन किया जाता है तो राग की प्रकृति के अनुसार वह विभिन्न प्रभाव व्यक्त करता है। यथा दरबारी राग गंभीर जबकि अड़ाना चंचल प्रकृति का ही सूचक है। रजाखानी वादन में चंचलता और अधिक बढ़ जाती है तथा श्रृंगारिक भावों का प्राधान्य हो जाता है। सितार वादक अपने वादन में लय का चमत्कार दिखाकर अद्भुतता का समन्वय भी कर सकता है। इसी प्रकार लय वैभिन्न्य से ही भावों के प्रकटीकरण में अर्थात् सितार के सौन्दर्य में भिन्नता आ जाती है।

---::---